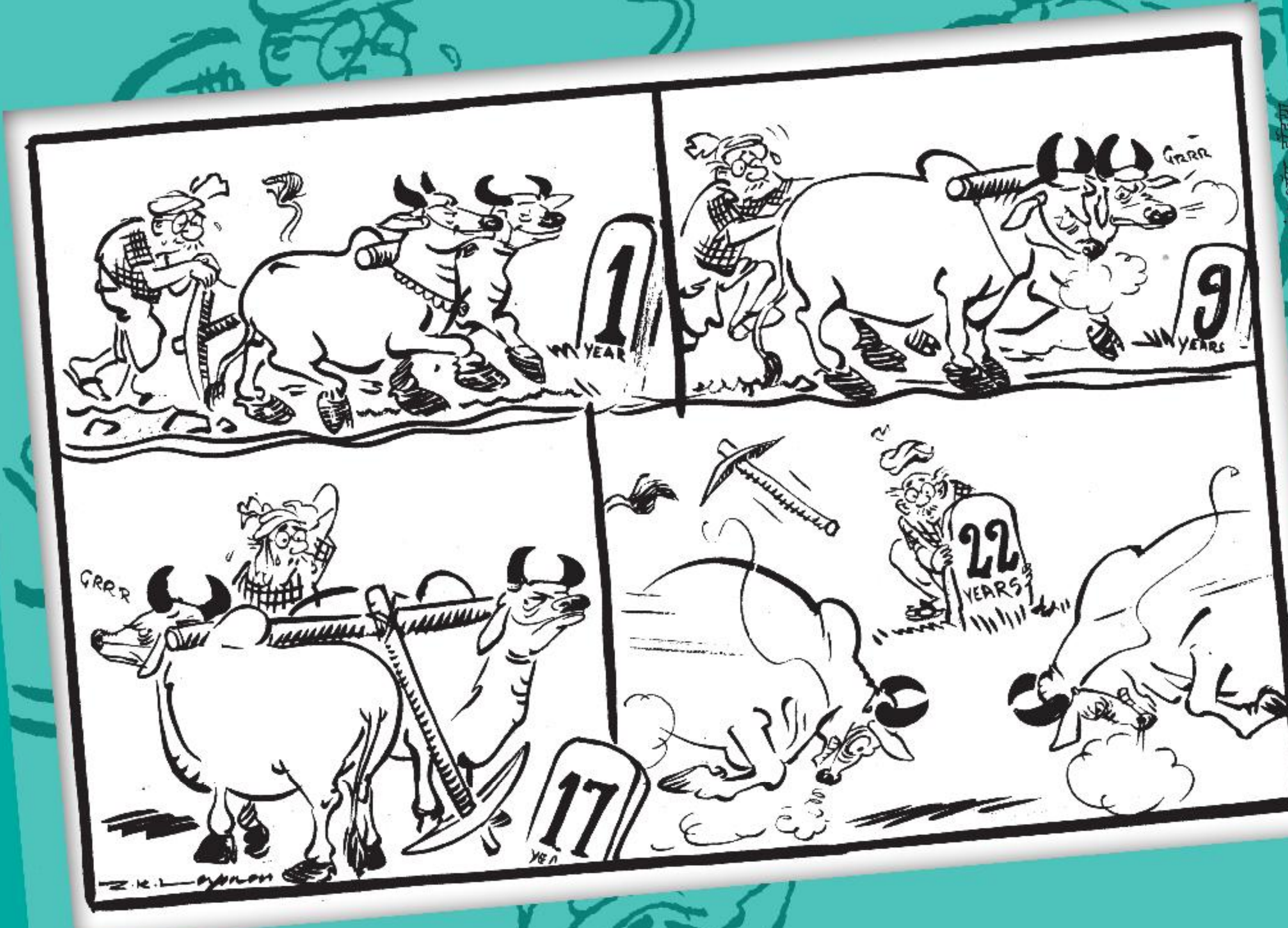

साभार आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

आज़ादी के बाद शुरुआत में कांग्रेस का चुनाव चिह्न दो बैलों की जोड़ी था। इस प्रसिद्ध कार्टून में कांग्रेस के भीतर आए बदलावों को दर्शाया गया है। कार्टून में दिखाया गया है कि आज़ादी के 22 वर्ष गुजरते-गुजरते कांग्रेस किस कदर फूट का शिकार हो गई थी।

इस अध्याय में...

इस किताब के दूसरे अध्याय में आपने कांग्रेस प्रणाली के उद्‌भव के बारे में पढ़ा था। इस प्रणाली को 1960 के दशक में पहली बार चुनौती मिली। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा गहन हो चली थी और ऐसे में कांग्रेस को अपना प्रभुत्व बरकरार रखने में मुश्किलें आ रही थीं। विपक्ष अब पहले की अपेक्षा कम विभाजित और कहीं ज़्यादा ताकतवर था। कांग्रेस को इस विपक्ष की चुनौती का सामना करना पड़ा। कांग्रेस को अंदरूनी चुनौतियाँ भी झेलनी पड़ीं, क्योंकि अब यह पार्टी अपने अंदर की विभिन्नता को एक साथ थामकर नहीं चल पा रही थी। इस अध्याय में हम अपनी बात वहीं से शुरू करेंगे, जहाँ पर दूसरे अध्याय में छोड़ी गई थी, ताकि हम समझ सकें कि

- नेहरू के बाद राजनीति ने क्या करवट ली;
- विपक्ष की एकता और खुद के बिखराव ने कांग्रेस के प्रभुत्व को कैसे चुनौती दी;
- इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में एक नयी कांग्रेस किस तरह इन चुनौतियों से उबरी; और
- कैसे नयी नीतियों तथा विचारधाराओं ने कांग्रेस प्रणाली की पुनर्वापसी की?

कांग्रेस प्रणाली : चुनौतियाँ और पुनर्स्थापना

अध्याय 5

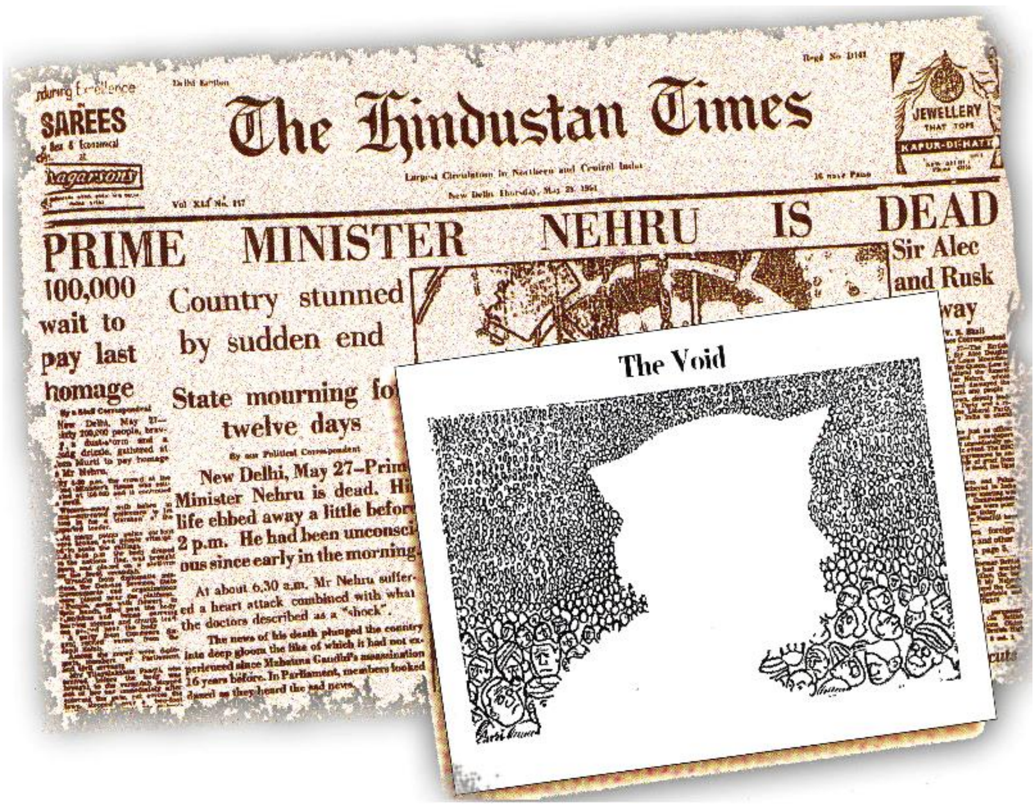
The Hindustan Times

PRIME MINISTER NEHRU IS DEAD

100,000 wait to pay last homage

Country stunned by sudden end

State mourning for twelve days

New Delhi, May 27–Prime Minister Nehru is dead. His life ebbed away a little before 2 p.m. He had been unconscious since early in the morning.

At about 6.30 a.m. Mr Nehru suffered a heart attack combined with what the doctors described as a "shock".

The news of his death plunged the country into deep gloom the like of which it had not experienced since Mahatma Gandhi's assassination 16 years before. In Parliament, members looked dazed as they heard the sad news.

Sir Alec and Rusk

The Void

राजनीतिक उत्तराधिकार की चुनौती

1964 के मई में नेहरू की मृत्यु हो गई। वे पिछले एक साल से भी ज़्यादा समय से बीमार चल रहे थे। इससे नेहरू के राजनीतिक उत्तराधिकारी को लेकर बड़े अंदेशे लगाए गए कि नेहरू के बाद कौन? लेकिन, भारत जैसे नव-स्वतंत्र देश में इस माहौल में एक और गंभीर सवाल हवा में तैर रहा था कि नेहरू के बाद आखिर इस देश में होगा क्या?

भारत से बाहर के बहुत से लोगों को संदेह था कि यहाँ नेहरू के बाद लोकतंत्र कायम भी रह पाएगा या नहीं। दूसरा सवाल इसी संदेह के दायरे में उठा था। आशंका थी कि बाकी बहुत से नव-स्वतंत्र देशों की तरह भारत भी राजनीतिक उत्तराधिकार का सवाल लोकतांत्रिक ढंग से हल नहीं कर पाएगा। असफल रहने की सूरत में भय था कि सेना राजनीतिक भूमिका में उतर आएगी। इसके अतिरिक्त, इस बात को लेकर भी संदेह थे कि देश के सामने बहुविध कठिनाइयाँ आन खड़ी हैं और नया नेतृत्व उनका समाधान खोज पाएगा या नहीं। 1960 के

दशक को 'खतरनाक दशक' कहा जाता है क्योंकि गरीबी, गैर-बराबरी, सांप्रदायिक और क्षेत्रीय विभाजन आदि के सवाल अभी अनसुलझे थे। संभव था कि इन सारी कठिनाइयों के कारण देश में लोकतंत्र की परियोजना असफल हो जाती अथवा खुद देश ही बिखर जाता।

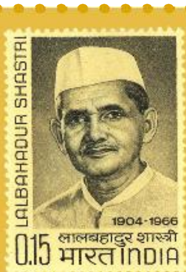

लालबहादुर शास्त्री (1904-1966) : भारत के दूसरे प्रधानमंत्री; 1930 से स्वतंत्रता आंदोलन में भागीदारी की; उत्तर प्रदेश मंत्रिमंडल में मंत्री रहे; कांग्रेस पार्टी के महासचिव का पदभार सँभाला; 1951-56 तक केंद्रीय मंत्रिमंडल में मंत्री पद पर रहे। इसी दौरान रेल-दुर्घटना की नैतिक जिम्मेवारी लेते हुए उन्होंने रेलमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया था। बाद में, 1957-64 के बीच भी मंत्री पद पर रहे। आपने 'जय जवान-जय किसान' का मशहूर नारा दिया था।

नेहरू के बाद शास्त्री

नेहरू के उत्तराधिकारी का सवाल इतनी आसानी से हल कर लिया गया कि आलोचक ठगे-से रह गए। नेहरू की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के. कामराज ने अपनी पार्टी के नेताओं और सांसदों से सलाह-मशविरा किया। उन्होंने पाया कि सभी लालबहादुर शास्त्री के पक्ष में हैं। शास्त्री, कांग्रेस संसदीय दल के निर्विरोध नेता चुने गए और इस तरह वे देश के प्रधानमंत्री बने। शास्त्री, उत्तर प्रदेश के थे और नेहरू के मंत्रिमंडल में कई सालों तक मंत्री रहे थे। उनको लेकर कभी किसी किस्म का विवाद नहीं उठा था। अपने आखिरी सालों में नेहरू उन पर ज़्यादा-से-ज़्यादा निर्भर होते गए थे। शास्त्री अपनी सादगी और सिद्धांत निष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे। एक दफा वे एक बड़ी रेल दुर्घटना की नैतिक जिम्मेवारी स्वीकार करते हुए रेलमंत्री के पद से इस्तीफा दे चुके थे।

शास्त्री 1964 से 1966 तक देश के प्रधानमंत्री रहे। इस पद पर वे बड़े कम दिनों तक रहे लेकिन इसी छोटी अवधि में देश ने दो बड़ी चुनौतियों का सामना किया। भारत, चीन युद्ध के कारण पैदा हुई आर्थिक कठिनाइयों से उबरने की कोशिश कर रहा था। साथ ही मानसून की असफलता से देश में सूखे की स्थिति थी। कई जगहों पर खाद्यान्न का गंभीर संकट आन पड़ा था। फिर, 1965 में पाकिस्तान के साथ भी युद्ध करना पड़ा। इसके बारे में आपने पिछले अध्याय में पढ़ा था। शास्त्री ने 'जय जवान-जय किसान' का नारा दिया, जिससे इन दोनों चुनौतियों से निपटने के उनके दृढ़ संकल्प का पता चलता है।

प्रधानमंत्री के पद पर शास्त्री बड़े कम दिनों तक रहे। 10 जनवरी 1966 को ताशकंद में अचानक उनका देहान्त हो गया। ताशकंद तब भूतपूर्व सोवियत संघ में था और आज यह उज़्बेकिस्तान की राजधानी है। युद्ध की समाप्ति के सिलसिले में पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति मोहम्मद अयूब खान से बातचीत करने और एक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए वे ताशकंद गए थे।

"*तमाम अंदेशों के बावजूद इंग्लैंड की तुलना में भारत में प्रधानमंत्री का सवाल ज़्यादा शालीनता और तेज़ी के साथ हल कर लिया गया*"

3 जून, 1964 के गार्जियन में प्रकाशित संपादकीय। इस संपादकीय में इंग्लैंड और भारत के राजनीतिक घटनाक्रमों की तुलना करते हुए यह बताया गया है कि भारत में जहाँ नेहरू की मृत्यु के बाद नए प्रधानमंत्री के सवाल को जल्दी ही हल कर लिया गया वहीं इंग्लैंड में हैरॉल्ड मैकमिलन के बाद नए प्रधानमंत्री का मामला लंबे समय तक खिंचता रहा।

शास्त्री के बाद इंदिरा गाँधी

शास्त्री की मृत्यु से कांग्रेस के सामने दुबारा राजनीतिक उत्तराधिकारी का सवाल उठ खड़ा हुआ। इस बार मोरारजी देसाई और इंदिरा गाँधी के बीच कड़ा मुकाबला था। मोरारजी देसाई बंबई प्रांत (मौजूदा महाराष्ट्र और गुजरात) के मुख्यमंत्री के पद पर रह चुके थे। केंद्रीय मंत्रिमंडल में वे मंत्री पद पर भी रह चुके थे। जवाहरलाल नेहरू की बेटी इंदिरा गाँधी गुजरे वक्त में कांग्रेस अध्यक्ष के पद पर रह चुकी थीं। शास्त्री के मंत्रिमंडल में उन्होंने सूचना मंत्रालय का प्रभार सँभाला था। इस दफा पार्टी के बड़े नेताओं ने इंदिरा गाँधी को समर्थन देने का मन बनाया लेकिन इंदिरा गाँधी के नाम पर सर्वसम्मति कायम नहीं की जा सकी। ऐसे में फ़ैसले के लिए कांग्रेस के सांसदों ने गुप्त मतदान किया। इंदिरा गाँधी ने मोरारजी देसाई को हरा दिया। उन्हें कांग्रेस पार्टी के दो-तिहाई से अधिक सांसदों ने अपना मत दिया था। नेतृत्व के लिए गहन

साभार: आर.के.लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ इंडिया

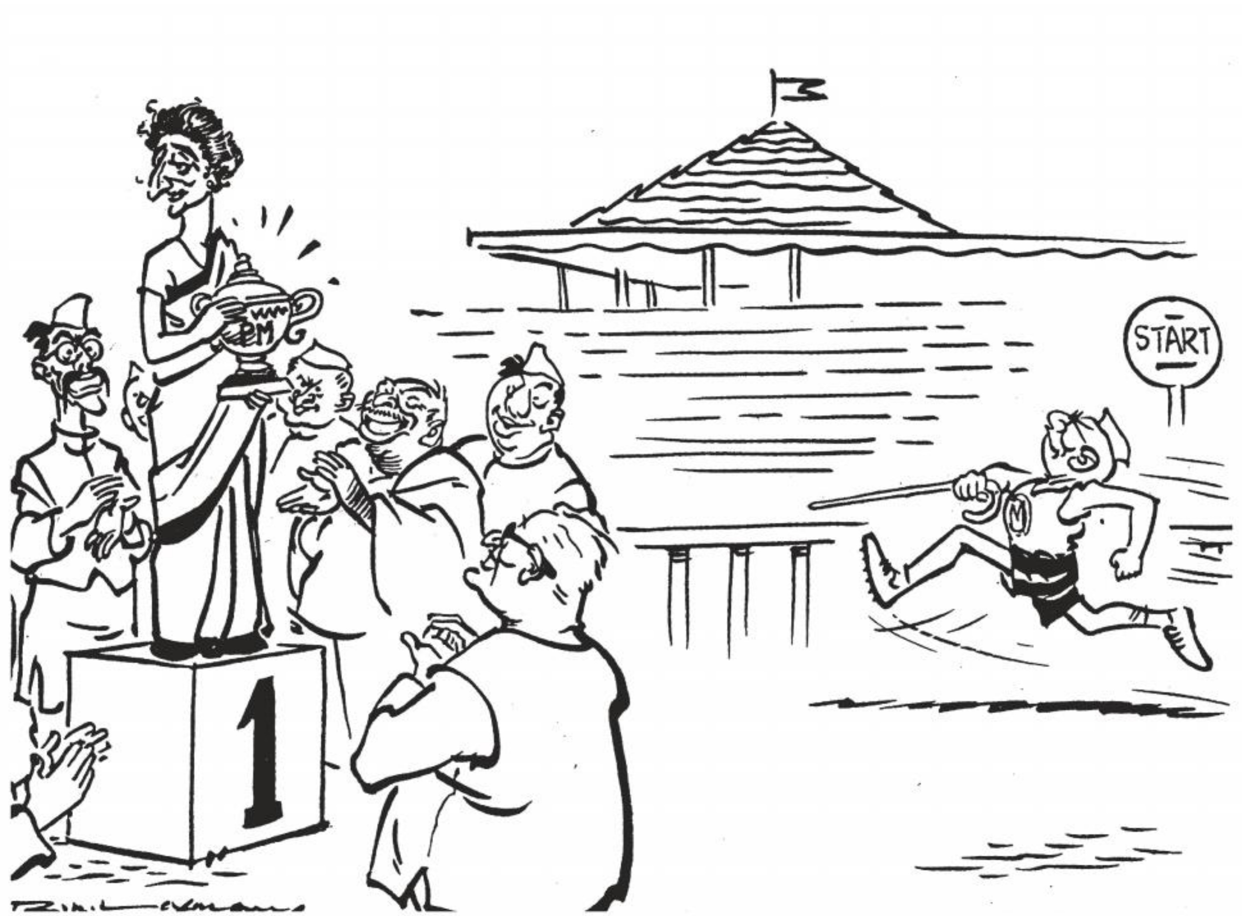

प्रतिस्पर्धा के बावजूद पार्टी में सत्ता का हस्तांतरण बड़े शांतिपूर्ण ढंग से संपन्न हो गया। इसे भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता के रूप में देखा गया।

नए प्रधानमंत्री को जमने में थोड़ा वक्त लगा। इंदिरा गाँधी यों तो बड़े लंबे समय से राजनीति में सक्रिय थीं, लेकिन लालबहादुर शास्त्री के मंत्रिमंडल में बड़े कम दिनों से मंत्री पद पर थीं। कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं ने संभवतया यह सोचकर उनका समर्थन किया होगा कि प्रशासनिक और राजनीतिक मामलों में खास अनुभव न होने के कारण समर्थन और दिशा-निर्देशन के लिए इंदिरा गाँधी उन पर निर्भर रहेंगी। प्रधानमंत्री बनने के एक साल के अंदर इंदिरा गाँधी को लोकसभा के चुनावों में पार्टी की अगुवाई करनी पड़ी। इस वक्त तक

इंदिरा गाँधी (1917-1984) : 1966 से 1977 तक और फिर 1980 से 1984 तक भारत की प्रधानमंत्री रहीं; युवा कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में स्वतंत्रता-आंदोलन में भागीदारी; 1958 में कांग्रेस की अध्यक्ष; 1964-66 में शास्त्री मंत्रिमंडल में केंद्रीय मंत्री के पद पर रहीं। 1967, 1971 और 1980 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को अपने नेतृत्व में विजयी बनाया; 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया; 1971 के युद्ध में जीत का श्रेय और प्रिवी पर्स की समाप्ति, बैंकों के राष्ट्रीयकरण, आण्विक-परीक्षण तथा पर्यावरण-संरक्षण के कदम उठाए। जवाहरलाल नेहरू की पुत्री; 31 अक्तूबर 1984 के दिन उनकी हत्या कर दी गई।

साभार: रघु राय

देश की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई थी। इससे इंदिरा की कठिनाइयाँ ज़्यादा बढ़ गईं। इन कठिनाइयों के मद्देनजर उन्होंने पार्टी पर अपना नियंत्रण बढ़ाने और अपने नेतृत्व कौशल को दिखाने की कोशिश की।

चौथा आम चुनाव, 1967

भारत के राजनीतिक और चुनावी इतिहास में 1967 के साल को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है। दूसरे अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि 1952 के बाद से पूरे देश में कांग्रेस पार्टी का राजनीतिक दबदबा कायम था। 1967 के चुनावों में इस प्रवृत्ति में गहरा बदलाव आया।

चुनावों का संदर्भ

चौथे आम चुनावों के आने तक देश में बड़े बदलाव हो चुके थे। दो प्रधानमंत्रियों का जल्दी-जल्दी देहावसान हुआ और नए प्रधानमंत्री को पद सँभाले हुए अभी पूरे एक साल का

अरसा भी नहीं गुजरा था। साथ ही, इस प्रधानमंत्री को राजनीति के लिहाज़ से कम अनुभवी माना जा रहा था। इस अध्याय के पूर्ववर्ती हिस्से और तीसरे अध्याय की चर्चा के क्रम में आप यह बात जान चुके हैं कि इस अरसे में देश गंभीर आर्थिक संकट में था। मानसून की असफलता, व्यापक सूखा, खेती की पैदावार में गिरावट, गंभीर खाद्य संकट, विदेशी मुद्रा-भंडार में कमी, औद्योगिक उत्पादन और निर्यात में गिरावट के साथ ही साथ सैन्य खर्चे में भारी बढ़ोतरी हुई थी। नियोजन और आर्थिक विकास के संसाधनों को सैन्य-मद में लगाना पड़ा। इन सारी बातों से देश की आर्थिक स्थिति विकट हो गई थी। इंदिरा गाँधी की सरकार के शुरुआती फ़ैसलों में एक था– रुपये का अवमूल्यन करना। माना गया कि रुपये का अवमूल्यन अमरीका के दबाव में किया गया। पहले के वक्त में 1 अमरीकी डॉलर की कीमत 5 रुपये थी, जो अब बढ़कर 7 रुपये हो गई।

आर्थिक स्थिति की विकटता के कारण कीमतों में तेज़ी से इजाफा हुआ। लोग आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि, खाद्यान्न की कमी, बढ़ती हुई बेरोजगारी और देश की दयनीय आर्थिक स्थिति को लेकर विरोध पर उतर आए। देश में अकसर 'बंद' और 'हड़ताल' की स्थिति रहने लगी। सरकार ने इसे कानून और व्यवस्था की समस्या माना न कि जनता की बदहाली की अभिव्यक्ति। इससे लोगों की नाराजगी बढ़ी और जन विरोध ने ज्यादा उग्र रूप धारण किया।

साम्यवादी और समाजवादी पार्टी ने व्यापक समानता के लिए संघर्ष छेड़ दिया। आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से अलग हुए साम्यवादियों के एक समूह ने मार्क्सवादी-लेनिनवादी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी बनायी और सशस्त्र कृषक-विद्रोह का नेतृत्व किया। साथ ही, इस पार्टी ने किसानों के बीच विरोध को संगठित किया। इस अवधि में गंभीर किस्म के हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी हुए। आज़ादी के बाद से अब तक इतने गंभीर सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए थे।

चुनाव-कथा राजस्थान के एक गाँव की

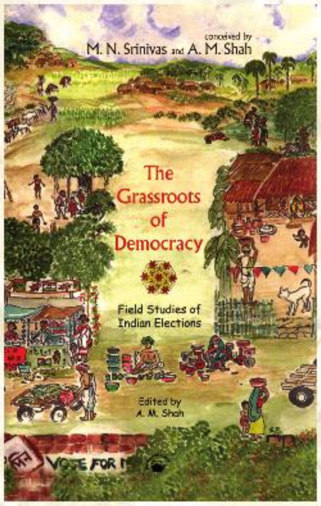

यह प्रसंग 1967 के विधानसभा चुनावों का है। चोमू नामक निर्वाचन क्षेत्र में कांग्रेस और स्वतंत्र पार्टी आमने-सामने थे। लेकिन उस निर्वाचन क्षेत्र के एक गाँव देवीसर में यह हुआ कि स्थानीय राजनीति का समीकरण कांग्रेस और स्वतंत्र पार्टी के चुनावी गणित से जा उलझा। देवीसर में शेर सिंह नाम के व्यक्ति का दबदबा था। परंतु धीरे-धीरे उसका भतीजा भीम सिंह ज्यादा लोकप्रिय होने लगा था। हालाँकि दोनों ही राजपूत थे, किन्तु भीम सिंह ने पंचायत का प्रधान बनने के बाद अन्य समुदायों के बीच भी जगह बना ली थी। दरअसल, उसने राजपूतों के अलावा गैर-राजपूत समुदायों को जोड़कर एक नया राजनीतिक समीकरण तैयार कर डाला था। भीम सिंह ने आस पास के गाँवों में ग्राम प्रधान पद के लिए कई उम्मीदवारों को समर्थन देने की घोषणा करके एक गठबंधन-सा तैयार कर लिया। भीम सिंह इतने भर से संतुष्ट नहीं था। वह कांग्रेस नेता और राज्य के मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया के पास एक प्रतिनिधिमंडल लेकर जा पहुँचा। उसने मुख्यमंत्री पर इस बात के लिए दबाव बनाने की कोशिश की कि आगामी विधानसभा चुनावों में उसके एक राजनीतिक सहयोगी को कांग्रेस की तरफ़ से उम्मीदवार बनाया जाए। मुख्यमंत्री सुखाड़िया ने भीम सिंह को समझाया कि ऐसा कर पाना मुश्किल होगा। उल्टे उन्होंने भीम सिंह को अपने मनपसंद उम्मीदवार को समर्थन देने के लिए राजी कर लिया। अब भीम सिंह ने अपने समर्थकों से मुख्यमंत्री द्वारा सुझाए गए उम्मीदवार के लिए काम करने को कहा। दरअसल, भीम सिंह यह बात भलीभाँति जानता था कि अगर कांग्रेसी उम्मीदवार जीत जाता है, तो उसका मंत्री बनना तय है और उसके मंत्री बनने का अर्थ है कि भीम सिंह मंत्री से सीधे संपर्क स्थापित कर सकता है।

शेर सिंह के पास स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार का साथ देने के अलावा और कोई चारा नहीं था। पार्टी का उम्मीदवार जागीरदार था। गाँव में चुनाव-प्रचार करने के दौरान शेर सिंह लोगों से यही कहता था कि जागीरदार गाँव में स्कूल का निर्माण कराएगा और गाँव के विकास के लिए अपनी जेब से पैसा लगाएगा। खैर, संक्षेप में, देवीसर गाँव में विधानसभा चुनाव चाचा-भतीजे की खेमेबाजी में बदल गया था।

आनंद चक्रवर्ती की पुस्तक *ए विलेज इन चोमू असेंबली कॉन्सटीट्एंसी इन राजस्थान* पर आधारित।

...भारत में जिस तरह की प्रवृत्तियाँ जारी हैं, उनमें एक सुव्यवस्थित समाज रचना को बनाए रखने का काम नागरिक सरकार के हाथों से जाता रहेगा और सेना ही फिर कानून-व्यवस्था बनाए रखने का एकमात्र विकल्प होगी... भारत को लोकतांत्रिक ढाँचे के भीतर विकसित करने का महान प्रयोग असफल हो चुका है...

नेविए मैक्सवेल ने उपर्युक्त बातें अपने लेख *'इंडियाज़ डिसइंटीग्रेटिंग डेमोक्रेसी'* में कही थीं। यह लेख 'लंदन टाइम्स' में प्रकाशित (1967) हुआ था।

गैर-कांग्रेसवाद

यह सारी स्थिति देश की दलगत राजनीति से अलग-थलग नहीं रह सकती थी। विपक्षी दल जनविरोध की अगुवाई कर रहे थे और सरकार पर दबाव डाल रहे थे। कांग्रेस की विरोधी पार्टियों ने महसूस किया कि उसके वोट बँट जाने के कारण ही कांग्रेस सत्तासीन है। जो दल अपने कार्यक्रम अथवा विचारधाराओं के धरातल पर एक-दूसरे से एकदम अलग थे, वे सभी दल एकजुट हुए और उन्होंने कुछ राज्यों में एक कांग्रेस विरोधी मोर्चा बनाया तथा अन्य राज्यों में सीटों के मामले में चुनावी तालमेल किया। इन दलों को लगा कि इंदिरा गाँधी की अनुभवहीनता और कांग्रेस की अंदरूनी उठापटक से उन्हें कांग्रेस को सत्ता से हटाने का एक अवसर हाथ लगा है। समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया ने इस रणनीति को 'गैर-कांग्रेसवाद' का नाम दिया। उन्होंने 'गैर-कांग्रेसवाद' के पक्ष में सैद्धांतिक तर्क देते हुए कहा कि कांग्रेस का शासन अलोकतांत्रिक और गरीब लोगों के हितों के खिलाफ़ है इसलिए गैर-कांग्रेसी दलों का एक साथ आना जरूरी है, ताकि गरीबों के हक में लोकतंत्र को वापस लाया जा सके।

सी. नटराजन अन्नादुरई (1909-1969) : 1967 से मद्रास (तमिलनाडु) के मुख्यमंत्री; चर्चित पत्रकार, लेखक एवं वक्ता; मद्रास राज्य में जस्टिस पार्टी से संबद्ध; बाद में द्रविड़ कषगम (1934) में शामिल; 1949 में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम का बतौर राजनीतिक पार्टी गठन; द्रविड़ संस्कृति के समर्थक, हिंदी का विरोध एवं हिंदी विरोधी आंदोलन का नेतृत्व; राज्यों की व्यापक स्वायत्तता के समर्थक।

राममनोहर लोहिया (1910-1967): समाजवादी नेता एवं विचारक; स्वतंत्रता-सेनानी एवं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य; मूल पार्टी में विभाजन के बाद सोशलिस्ट पार्टी एवं बाद में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता; 1963 से 1967 तक लोकसभा सांसद, 'मैनकाइंड' एवं 'जन' के संस्थापक संपादक, गैर-यूरोपीय समाजवादी सिद्धांत के विकास में मौलिक योगदान; विचारधारा का संयोजन; गैर-कांग्रेसवाद के रणनीतिकार, पिछड़े वर्गों को आरक्षण की वकालत और अंग्रेज़ी विरोध के अलावा ऐसे राजनीतिक नेता के रूप में चर्चित, जिन्होंने नेहरू के खिलाफ़ मोर्चा खोला।

चुनाव का जनादेश

व्यापक जन-असंतोष और राजनीतिक दलों के ध्रुवीकरण के इसी माहौल में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए 1967 के फरवरी माह में चौथे आम चुनाव हुए। कांग्रेस पहली बार नेहरू के बिना मतदाताओं का सामना कर रही थी।

चुनाव के परिणामों से कांग्रेस को राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर गहरा धक्का लगा। तत्कालीन अनेक राजनीतिक पर्यवेक्षकों ने चुनाव परिणामों को 'राजनीतिक भूकंप' की संज्ञा दी। कांग्रेस को जैसे-तैसे लोकसभा में बहुमत तो मिल गया था, लेकिन उसको प्राप्त मतों के प्रतिशत तथा सीटों की संख्या में भारी गिरावट आई थी। अब से पहले कांग्रेस को कभी न तो इतने कम वोट मिले थे और न ही इतनी कम सीटें मिली थीं। इंदिरा गाँधी के मंत्रिमंडल के आधे मंत्री चुनाव हार गए थे। तमिलनाडु से कामराज, महाराष्ट्र से एस.के. पाटिल, पश्चिम बंगाल से अतुल्य घोष और बिहार से के.बी. सहाय जैसे राजनीतिक दिग्गजों को मुँह की खानी पड़ी थी।

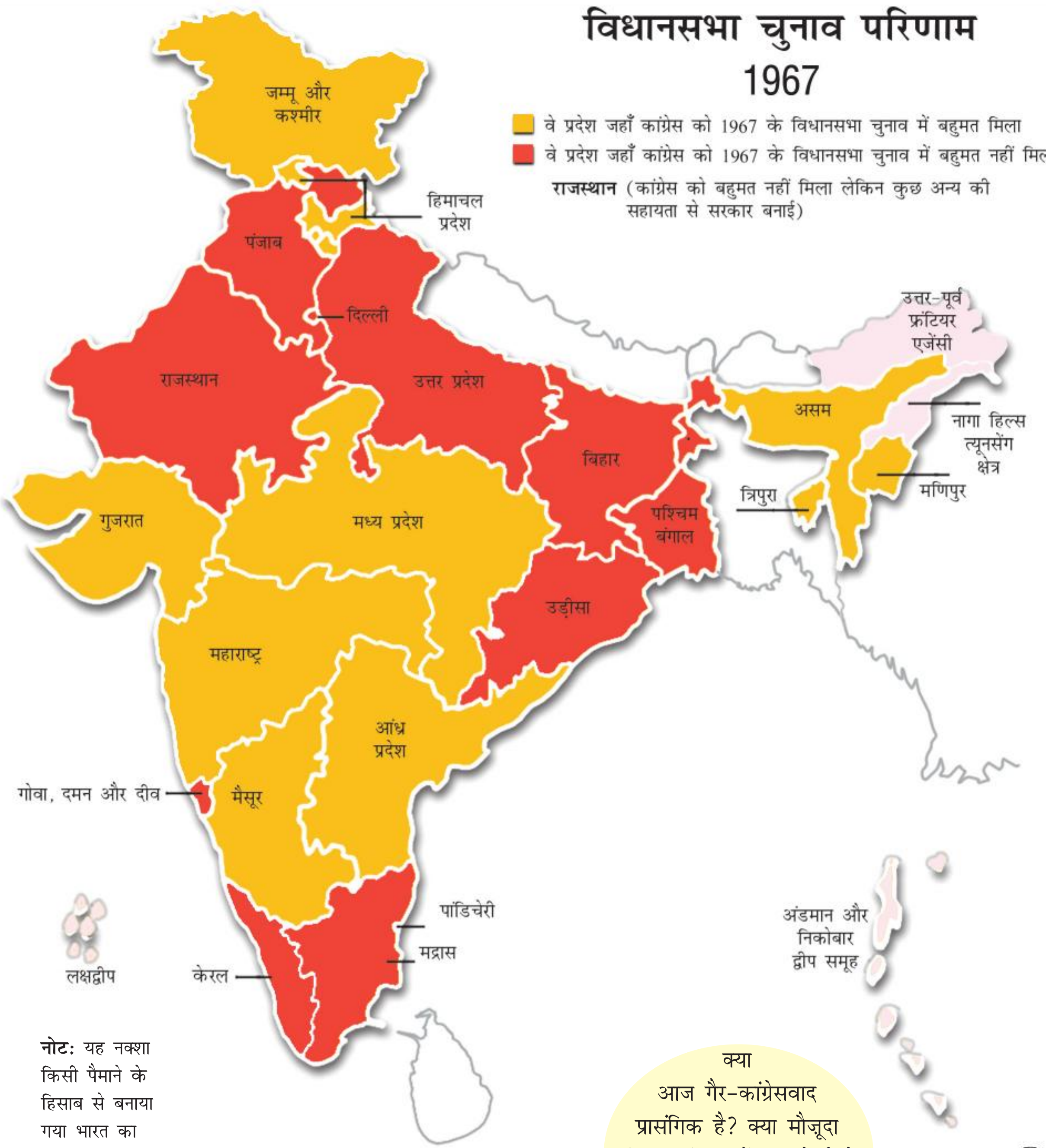

नोट: यह नक्शा किसी पैमाने के हिसाब से बनाया गया भारत का मानचित्र नहीं है। इसमें दिखाई गई भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को प्रामाणिक सीमा रेखा न माना जाए।

राजनीतिक बदलाव की यह नाटकीय स्थिति आपको राज्यों में और ज़्यादा स्पष्ट नज़र आएगी। कांग्रेस को सात राज्यों में बहुमत नहीं मिला। दो अन्य राज्यों में दलबदल के कारण यह पार्टी सरकार नहीं बना सकी। जिन 9 राज्यों में कांग्रेस के हाथ से सत्ता निकल गई थी, वे देश के किसी एक भाग में कायम राज्य नहीं थे। ये राज्य पूरे देश के अलग-अलग हिस्सों में थे। कांग्रेस पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और केरल में सरकार नहीं बना सकी। मद्रास प्रांत (अब इसे तमिलनाडु कहा जाता है) में एक क्षेत्रीय पार्टी द्रविड़ मुनेत्र कषगम पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता पाने में कामयाब रही। द्रविड़ मुनेत्र कषगम (डीएमके) हिंदी-विरोधी आंदोलन का नेतृत्व करके सत्ता में आई थी। यहाँ के छात्र हिंदी को राजभाषा के रूप में केंद्र द्वारा अपने ऊपर थोपने का विरोध कर रहे थे और डीएमके ने उनके इस विरोध को नेतृत्व प्रदान किया था। चुनावी इतिहास में यह पहली घटना थी जब किसी गैर-कांग्रेसी दल को किसी राज्य में पूर्ण बहुमत मिला। अन्य आठ राज्यों में विभिन्न गैर-कांग्रेसी दलों की गठबंधन सरकार बनी। उस समय आमतौर पर कहा जाता था कि दिल्ली से हावड़ा जाने के लिए ट्रेन पर बैठो, तो यह ट्रेन अपने पूरे रास्ते में एक भी कांग्रेस-शासित राज्य से होकर नहीं गुज़रेगी। लोग कांग्रेस को सत्तासीन देखने के अभ्यस्त थे और उनके लिए यह एक विचित्र अनुभव था। तो क्या मान लिया जाए कि कांग्रेस का दबदबा खत्म हो गया?

गठबंधन

1967 के चुनावों से गठबंधन की परिघटना सामने आयी। चूँकि किसी पार्टी को बहुमत नहीं मिला था, इसलिए अनेक गैर-कांग्रेसी पार्टियों ने एकजुट होकर संयुक्त विधायक दल बनाया और गैर-कांग्रेसी सरकारों को समर्थन दिया। इसी कारण इन सरकारों को संयुक्त विधायक दल की सरकार कहा गया। अधिकतर मामलों में ऐसी सरकार के घटक दल विचारधारा के लिहाज से एक-दूसरे से भिन्न थे। मिसाल के लिए बिहार में बनी संयुक्त विधायक दल की सरकार में दो समाजवादी पार्टियाँ—एसएसपी और पीएसपी—शामिल थीं। इनके साथ इस सरकार में वामपंथी—सीपीआई और दक्षिणपंथी जनसंघ—भी शामिल थे। पंजाब में बनी संयुक्त विधायक दल की सरकार को 'पॉपुलर यूनाइटेड फ्रंट' की सरकार कहा गया। इसमें उस वक्त के दो परस्पर प्रतिस्पर्धी अकाली दल-संत ग्रुप और मास्टर ग्रुप शामिल थे। इनके साथ सरकार में दोनों साम्यवादी दल सीपीआई और सीपीआई (एम), एसएसपी, रिपब्लिकन पार्टी और भारतीय जनसंघ भी शामिल थे।

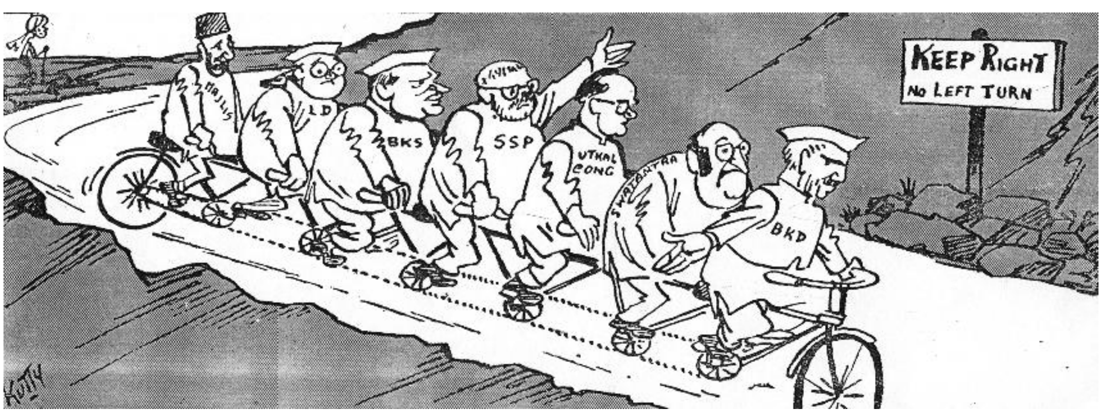

साभार: कुट्टी

1974 में गैर-साम्यवादी दलों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिशों पर कार्टूनिस्ट का नज़रिया।

दल-बदल

1967 के चुनावों की एक खास बात दल-बदल भी है। इसने राज्यों में सरकारों के बनने-बिगड़ने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। कोई जनप्रतिनिधि किसी खास दल के चुनाव चिह्न को लेकर चुनाव लड़े और जीत जाए और चुनाव जीतने के बाद इस दल को छोड़कर किसी दूसरे दल में शामिल हो जाए, तो इसे दल-बदल कहते हैं। 1967 के आम चुनावों के बाद कांग्रेस को छोड़ने वाले विधायकों ने तीन राज्यों–हरियाणा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश–में गैर-कांग्रेसी सरकारों को बहाल करने में अहम भूमिका निभायी। इस दौर में राजनीतिक निष्ठा की इस अदल-बदल से 'आया राम-गया राम' का जुमला मशहूर हुआ।

'आया राम-गया राम'

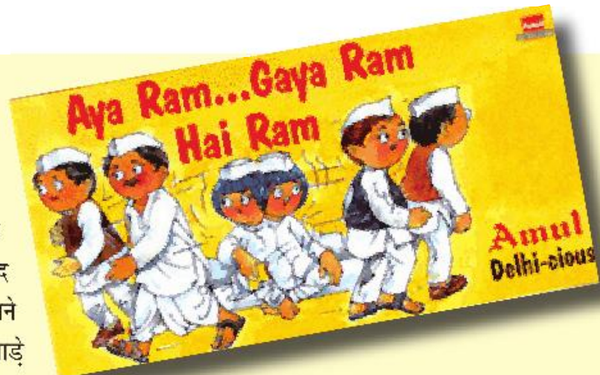

विधायकों द्वारा तुरंत-फुरंत पार्टी छोड़कर दूसरी-तीसरी पार्टी में शामिल होने की घटना से भारत के राजनीतिक शब्दकोश में 'आया राम-गया राम' का जुमला दाखिल हुआ। इस जुमले की प्रसिद्धि के साथ एक खास घटना जुड़ी हुई है। 1967 के चुनावों के बाद हरियाणा के एक विधायक–गया लाल ने राजनीतिक निष्ठा बदलने का जैसे एक कीर्तिमान ही स्थापित कर दिया था। उन्होंने एक पखवाड़े के अंदर तीन दफा अपनी पार्टी बदली। पहले वे कांग्रेस से यूनाइटेड फ्रंट में गए, फिर कांग्रेस में लौटे और कांग्रेस में लौटने के 9 घंटों के अंदर दोबारा यूनाइटेड फ्रंट में चले गए। कहा जाता है कि जब गया लाल ने यूनाइटेड फ्रंट छोड़कर कांग्रेस में आने की मंशा ज़ाहिर की तो कांग्रेस के नेता राव वीरेन्द्र सिंह ने उन्हें लेकर चंडीगढ़ में प्रेस के सामने घोषणा की – "गया राम था अब आया राम है।"

गया लाल की इस हड़बड़ी को 'आया राम-गया राम' के जुमले में हमेशा के लिए दर्ज़ कर लिया गया। उनकी इस हड़बड़ी को लेकर बहुत-से चुटकुले और कार्टून बने। बाद के समय में दल-बदल रोकने के लिए संविधान में संशोधन किया गया।

कांग्रेस में विभाजन

हमने देखा कि 1967 के चुनावों के बाद केंद्र में कांग्रेस की सत्ता कायम रही, लेकिन उसे पहले जितना बहुमत हासिल नहीं था। साथ ही अनेक राज्यों में इस पार्टी के हाथ से सत्ता जाती रही। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि चुनाव के नतीजों ने साबित कर दिया था कि कांग्रेस को चुनावों में हराया जा सकता है। बहरहाल, अब भी कांग्रेस का कोई विकल्प नहीं था। राज्यों में बनी अधिकतर गैर-कांग्रेसी गठबंधन की सरकारें ज़्यादा दिनों तक नहीं टिक पाईं। इन सरकारों ने बहुमत खोया और उन्हें या तो नए सिरे से गठबंधन बनाना पड़ा अथवा राष्ट्रपति शासन लागू करना पड़ा।

इंदिरा बनाम सिंडिकेट

इंदिरा गाँधी को असली चुनौती विपक्ष से नहीं बल्कि खुद अपनी पार्टी के भीतर से मिली। उन्हें 'सिंडिकेट' से निपटना पड़ा। 'सिंडिकेट' कांग्रेस

के. कामराज (1903-1975) :

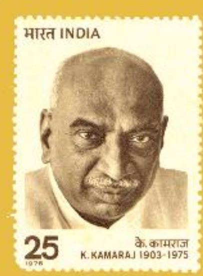

स्वतंत्रता-सेनानी और कांग्रेस के नेता; मद्रास (तमिलनाडु) के मुख्यमंत्री रहे; मद्रास प्रांत में शिक्षा का प्रसार करने और स्कूली बच्चों को 'दोपहर का भोजन' देने की योजना लागू करने के लिए प्रसिद्ध; 1963 में उन्होंने प्रस्ताव रखा कि सभी वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं को इस्तीफ़ा दे देना चाहिए, ताकि अपेक्षाकृत युवा पार्टी कार्यकर्ता कमान सँभाल सकें। यह प्रस्ताव 'कामराज योजना' के नाम से मशहूर हुआ। आप कांग्रेस अध्यक्ष भी रहे।

कांग्रेस 'सिंडिकेट'

कांग्रेसी नेताओं के एक समूह को अनौपचारिक तौर पर 'सिंडिकेट' के नाम से इंगित किया जाता था। इस समूह के नेताओं का पार्टी के संगठन पर नियंत्रण था। 'सिंडिकेट' के अगुवा मद्रास प्रांत के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और फिर कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष रह चुके के. कामराज थे। इसमें प्रांतों के ताकतवर नेता जैसे बंबई सिटी (अब मुंबई) के एस.के. पाटिल, मैसूर (अब कर्नाटक) के एस. निजलिंगप्पा, आंध्र प्रदेश के एन. संजीव रेड्डी और पश्चिम बंगाल के अतुल्य घोष शामिल थे। लालबहादुर शास्त्री और उसके बाद इंदिरा गाँधी, दोनों ही सिंडिकेट की सहायता से प्रधानमंत्री के पद पर आरूढ़ हुए थे। इंदिरा गाँधी के पहले मंत्रिपरिषद् में इस समूह की निर्णायक भूमिका रही। इसने तब नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में भी अहम भूमिका निभायी थी। कांग्रेस के विभाजित होने के बाद सिंडीकेट के नेताओं और उनके प्रति निष्ठावान कांग्रेसी कांग्रेस (ओ) में ही रहे। चूँकि इंदिरा गाँधी की कांग्रेस (आर) ही लोकप्रियता की कसौटी पर सफल रही, इसलिए भारतीय राजनीति के ये बड़े और ताकतवर नेता 1971 के बाद प्रभावहीन हो गए।

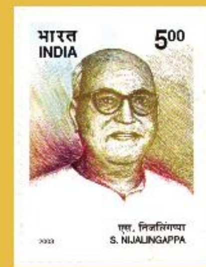

एस. निजलिंगप्पा (1902-2000) : वरिष्ठ कांग्रेस नेता; संविधान सभा के सदस्य; लोकसभा के सदस्य; तत्कालीन मैसूर प्रांत (अब कर्नाटक) के मुख्यमंत्री; आधुनिक कर्नाटक के निर्माता के रूप में प्रसिद्ध; 1968-71 के दौरान कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष।

के भीतर ताकतवर और प्रभावशाली नेताओं का एक समूह था। 'सिंडिकेट' ने इंदिरा गाँधी को प्रधानमंत्री बनवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उसी ने इंदिरा गाँधी का कांग्रेस संसदीय दल के नेता के रूप में चुना जाना सुनिश्चित किया था। सिंडिकेट के नेताओं को उम्मीद थी कि इंदिरा गाँधी उनकी सलाहों पर अमल करेंगी। बहरहाल, इंदिरा गाँधी ने सरकार और पार्टी के भीतर खुद का मुकाम बनाना शुरू किया। उन्होंने अपने सलाहकारों और विश्वस्तों के समूह में पार्टी से बाहर के लोगों को रखा। धीरे-धीरे और बड़ी सावधानी से उन्होंने सिंडिकेट को हाशिए पर ला खड़ा किया।

इस तरह इंदिरा गाँधी ने दो चुनौतियों का सामना किया। उन्हें 'सिंडिकेट' के प्रभाव से स्वतंत्र अपना मुकाम बनाने की ज़रूरत थी। कांग्रेस ने 1967 के चुनाव में जो ज़मीन खोयी थी उसे भी उन्हें हासिल करना था। इंदिरा गाँधी ने बड़ी साहसिक रणनीति अपनायी। उन्होंने एक साधारण से सत्ता-संघर्ष को विचारधारात्मक संघर्ष में बदल दिया। उन्होंने सरकार की नीतियों को वामपंथी रंग देने के लिए कई कदम उठाए। 1967 की मई में कांग्रेस कार्यसमिति ने उनके प्रभाव से दस-सूत्री कार्यक्रम अपनाया। इस कार्यक्रम में बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण, आम बीमा के राष्ट्रीयकरण, शहरी संपदा और आय के परिसीमन, खाद्यान्न का सरकारी वितरण, भूमि सुधार तथा ग्रामीण गरीबों को

कर्पूरी ठाकुर (1924-1988) : दिसंबर 1970 और जून 1971 तथा जून 1977 और अप्रैल 1979 के दौरान बिहार के मुख्यमंत्री; स्वतंत्रता सेनानी एवं समाजवादी नेता; मज़दूर एवं किसान आंदोलनों में सक्रिय; लोहिया के प्रबल समर्थक; जेपी द्वारा चलाए गए आंदोलन में भागीदारी; मुख्यमंत्री के रूप में अपने दूसरे कार्यकाल के दौरान बिहार में पिछड़ों के लिए आरक्षण लागू करने वाले के रूप में पहचान; अंग्रेज़ी भाषा के इस्तेमाल के प्रबल विरोधी।

आवासीय भूखंड देने के प्रावधान शामिल थे। हालाँकि सिंडिकेट के नेताओं ने औपचारिक तौर पर वामपंथी खेमे के इस कार्यक्रम को स्वीकृति दे दी, लेकिन इसे लेकर उनके मन में गहरे संदेह थे।

राष्ट्रपति पद का चुनाव, 1969

सिंडिकेट और इंदिरा गाँधी के बीच की गुटबाज़ी 1969 में राष्ट्रपति पद के चुनाव के समय खुलकर सामने आ गई। तत्कालीन राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन की मृत्यु के कारण उस साल राष्ट्रपति का पद खाली था। इंदिरा गाँधी की असहमति के बावजूद उस साल सिंडिकेट ने तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष एन. संजीव रेड्डी को कांग्रेस पार्टी की तरफ़ से राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में खड़ा करवाने में सफलता पाई। एन. संजीव रेड्डी से इंदिरा गाँधी की बहुत दिनों से राजनीतिक अनबन चली आ रही थी। ऐसे में इंदिरा गाँधी ने भी हार नहीं मानी। उन्होंने तत्कालीन उपराष्ट्रपति वी.वी. गिरि को बढ़ावा दिया कि वे एक स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में राष्ट्रपति पद के लिए अपना नामांकन भरें। इंदिरा गाँधी ने

वी.वी. गिरि (1894-1980) : 1969 से 1974 तक भारत के राष्ट्रपति; कांग्रेस नेता एवं आंध्र प्रदेश के मज़दूर नेता; सिलोन (श्रीलंका) में भारतीय उच्चायुक्त; केंद्रीय मंत्रिमंडल में श्रम मंत्री, उत्तर प्रदेश, केरल, मैसूर (कर्नाटक) के राज्यपाल; उपराष्ट्रपति (1967 से 1969) एवं राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन के निधन के बाद कार्यकारी राष्ट्रपति; इस्तीफ़ा एवं राष्ट्रपति चुनाव में स्वतंत्र प्रत्याशी; राष्ट्रपति के चुनाव में इंदिरा गाँधी के समर्थन से विजयी।

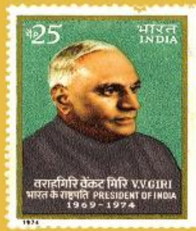

साभार: आर.के. लक्ष्मण, टाइम्स ऑफ़ इंडिया

यह कार्टून वी.वी. गिरि की जीत के बाद छपा था। इसमें उन्हें एक विजयी मुक्केबाज़ के रूप में दिखाया गया है। उनके गले में माला लटक रही है। उनका मुकाबला सिंडिकेट के उम्मीदवार से था। कार्टून में सिंडिकेट के प्रतीक के रूप में निजलिंगप्पा को घुटने टेकते दिखाया गया है। क्या आप बता सकते हैं कि इस कार्टून में इंदिरा गाँधी को मुक्केबाज़ी वाला दस्ताना पहने क्यों दिखाया गया है।

इतिहास... लोकतंत्र की त्रासदी के ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है, जब जनसमर्थन की लहर के बूते अथवा किसी लोकतांत्रिक संगठन के बल पर सत्तासीन हुआ नेता राजनीतिक आत्ममोह का शिकार हो जाता है और चरित्रहीन चाटुकार दरबारियों की बातों में जीने लगता है...

एस. निजलिंगप्पा

इंदिरा गाँधी को पार्टी से निष्कासित करते हुए एस. निजलिंगप्पा ने उन्हें 11 नवंबर 1969 को एक चिट्ठी लिखी। उपर्युक्त पंक्तियाँ इसी पत्र का अंश हैं।

चौदह अग्रणी बैंकों के राष्ट्रीयकरण और भूतपूर्व राजा-महाराजाओं को प्राप्त विशेषाधिकार यानी 'प्रिवी पर्स' को समाप्त करने जैसी कुछ बड़ी और जनप्रिय नीतियों की घोषणा भी की। उस वक्त मोरारजी देसाई देश के उपप्रधानमंत्री और वित्तमंत्री थे। उपर्युक्त दोनों मुद्दों पर प्रधानमंत्री और उनके बीच गहरे मतभेद उभरे और इसके परिणामस्वरूप मोरारजी ने सरकार से किनारा कर लिया।

गुज़रे वक्त में भी कांग्रेस के भीतर इस तरह के मतभेद उठ चुके थे, लेकिन इस बार मामला कुछ अलग ही था। दोनों गुट चाहते थे कि राष्ट्रपति पद के चुनाव में ताकत को आजमा ही लिया जाए। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष एस. निजलिंगप्पा ने 'व्हिप' जारी किया कि सभी 'कांग्रेसी सांसद और विधायक पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार संजीव रेड्डी को वोट डालें।' इंदिरा गाँधी के समर्थक गुट ने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की विशेष बैठक आयोजित करने की याचना की, लेकिन उनकी यह याचना स्वीकार नहीं की गई। वी.वी. गिरि का छुपे तौर पर समर्थन करते हुए प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने खुलेआम अंतरात्मा की आवाज़ पर वोट डालने को कहा। इसका मतलब यह था कि कांग्रेस के सांसद और विधायक अपनी मनमर्ज़ी से किसी भी उम्मीदवार को वोट डाल सकते हैं। आखिरकार राष्ट्रपति पद के चुनाव में वी.वी. गिरि ही विजयी हुए। वे स्वतंत्र उम्मीदवार थे, जबकि एन. संजीव रेड्डी कांग्रेस पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार थे।

कांग्रेस पार्टी के आधिकारिक उम्मीदवार की हार से पार्टी का टूटना तय हो गया। कांग्रेस अध्यक्ष ने प्रधानमंत्री को अपनी पार्टी से निष्कासित कर दिया। पार्टी से निष्कासित प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने कहा कि उनकी पार्टी ही असली कांग्रेस है। 1969 के नवंबर तक सिंडिकेट की अगुवाई वाले कांग्रेसी खेमे को कांग्रेस (ऑर्गनाइजेशन) और इंदिरा गाँधी की अगुवाई वाले कांग्रेसी खेमे को कांग्रेस (रिक्विजिनिस्ट) कहा जाने लगा था। इन दोनों दलों को क्रमशः 'पुरानी कांग्रेस' और 'नयी कांग्रेस' भी कहा जाता था। इंदिरा गाँधी ने पार्टी की इस टूट को

'प्रिवी पर्स' की समाप्ति

पहले अध्याय में आपने देसी रियासतों के विलय के बारे में पढ़ा था। देसी रियासतों का विलय भारतीय संघ में करने से पहले सरकार ने यह आश्वासन दिया था कि रियासतों के तत्कालीन शासक परिवार को निश्चित मात्रा में निजी संपदा रखने का अधिकार होगा। साथ ही सरकार की तरफ़ से उन्हें कुछ विशेष भत्ते भी दिए जाएँगे। ये दोनों चीज़ें (यानी शासक की निजी संपदा और भत्ते) इस बात को आधार मानकर तय की जाएँगी कि जिस राज्य का विलय किया जाना है उसका विस्तार, राजस्व और क्षमता कितनी है। इस व्यवस्था को 'प्रिवी पर्स' कहा गया। रियासतों के विलय के समय राजा-महाराजाओं को दी गई इस विशेष सुविधा की कुछ खास आलोचना नहीं हुई थी। उस वक्त देश की एकता, अखंडता का लक्ष्य ही प्रमुख था।

बहरहाल ये वंशानुगत विशेषाधिकार भारतीय संविधान में वर्णित समानता और सामाजिक-आर्थिक न्याय के सिद्धांतों से मेल नहीं खाते थे। नेहरू ने कई दफे इस व्यवस्था को लेकर अपना असंतोष जताया था। 1967 के चुनावों के बाद इंदिरा गाँधी ने 'प्रिवी पर्स' को खत्म करने की माँग का समर्थन किया। उनकी राय थी कि सरकार को 'प्रिवी पर्स' की व्यवस्था समाप्त कर देनी चाहिए। मोरारजी देसाई प्रिवी पर्स की समाप्ति को नैतिक रूप से गलत मानते थे। उनका कहना था कि यह 'रियासतों के साथ विश्वासघात' के बराबर होगा।

प्रिवी पर्स की व्यवस्था को खत्म करने के लिए सरकार ने 1970 में संविधान में संशोधन के प्रयास किए, लेकिन राज्यसभा में यह मंजूरी नहीं पा सका। इसके बाद सरकार ने एक अध्यादेश जारी किया, लेकिन इसे सर्वोच्च न्यायालय ने निरस्त कर दिया। इंदिरा गाँधी ने इसे 1971 के चुनावों में एक बड़ा मुद्दा बनाया और इस मुद्दे पर उन्हें जन समर्थन भी खूब मिला। 1971 में मिली भारी जीत के बाद संविधान में संशोधन हुआ और इस तरह प्रिवी पर्स की समाप्ति की राह में मौजूद कानूनी अड़चनें खत्म हो गईं।

JEWELLERY
PEARLS, EMERALDS
RUBIES NAVRATAN
NEW DESIGNS
GIRDHARILAL

THE HINDUSTAN TIMES

Regd No D141 | New Delhi Saturday August 16 1969 | Eighteen Paise

KUTAB MINAR ARTIST PENCILS

PM INSISTS ON FREE VOTE

Congress splits on historic day

No-confidence move against Nijalingappa

Hindustan Times Correspondent

New Delhi, Aug. 15—Confirming the worst fears of the past few

States trend shows no major change

A decision to stand by the mandate and an equally pronounced reiteration of the demand for a free vote in the Presidential poll marked the final phase of the campaign by rival Congress factions in the States. The following developments were reported on Thursday by Hindustan Times Correspondents:

1) Kashmir - Congress decided "almost unanimously" to vote for Mr Giri. There are ... Congress members, three Jan Sangh, three National Conference and three independents in the Assembly. The three independents are voting for Mr Giri.

2) Punjab: Leader of the Congress Legislature Party Harinder Singh and PCC President Zail Singh have withdrawn their earlier whips asking members to vote for Mr Reddy.

3) Haryana: Twelve Congress MLAs decided to vote according to their conscience.

4) Gujarat: No change in Congress MLAs decision to stand by the party mandate.

5) Madhya Pradesh: The dismissal of Mr D. P. Mishra's election petition brought a lull in the "free vote" campaign. The Lok Sevak Dal (... seats) decided to give its first preference vote to Mr Reddy. Congress cross-voting will be substantial.

6) West Bengal: Congress whip was withdrawn. Members have been allowed to vote according to their conscience. Majority of the ... Congress MLAs to vote for Mr Giri.

7) Assam: Congress members decided to stand by the ...

साभार: कुट्टी

कांग्रेस का विभाजन अपरिहार्य : इंदिरा गाँधी के सिंडिकेट के साथ हुए सत्ता-संघर्ष के निहितार्थ पर कार्टूनिस्ट का नज़रिया।

विचारधाराओं की लड़ाई के रूप में पेश किया। उन्होंने इसे 'समाजवादी' और 'पुरातनपंथी' तथा गरीबों के हिमायती और अमीरों के तरफ़दार के बीच की लड़ाई करार दिया।

1971 का चुनाव और कांग्रेस का पुनर्स्थापन

कांग्रेस की टूट से इंदिरा गाँधी की सरकार अल्पमत में आ गई। बहरहाल, डीएमके और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी समेत कुछ अन्य दलों से प्राप्त मुद्दा आधारित समर्थन के बल पर इंदिरा गाँधी की सरकार सत्ता में बनी रही। इस अरसे के दौरान सरकार ने सचेत रूप से अपनी छवि को समाजवादी रंग में पेश किया। इसी दौर में इंदिरा गाँधी ने भूमि सुधार के मौजूदा कानूनों के क्रियान्वयन के लिए ज़बरदस्त अभियान चलाया। उन्होंने भू-परिसीमन के कुछ और कानून भी बनवाए। दूसरे राजनीतिक दलों पर अपनी निर्भरता समाप्त करने, संसद में अपनी पार्टी की स्थिति मज़बूत करने और अपने कार्यक्रमों के पक्ष में जनादेश हासिल करने की गरज से इंदिरा गाँधी की सरकार ने 1970 के दिसंबर में लोकसभा भंग करने की सिफ़ारिश की। यह भी एक आश्चर्यजनक और साहसिक कदम था। लोकसभा के लिए पाँचवें आम चुनाव 1971 के फ़रवरी माह में हुए।

मुकाबला

चुनावी मुकाबला कांग्रेस (आर) के विपरीत जान पड़ रहा था। आखिर नयी कांग्रेस एक जर्जर होती हुई पार्टी का हिस्सा भर थी। हर किसी को विश्वास था कि कांग्रेस पार्टी की असली सांगठनिक ताकत कांग्रेस (ओ) के नियंत्रण में है। इसके अतिरिक्त, सभी बड़ी गैर-साम्यवादी और गैर-कांग्रेसी विपक्षी पार्टियों ने एक चुनावी गठबंधन बना लिया था। इसे 'ग्रैंड अलायंस' कहा गया। इससे इंदिरा गाँधी के लिए स्थिति और कठिन हो गई। एसएसपी, पीएसपी, भारतीय जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी और भारतीय क्रांतिदल, चुनाव में एक छतरी के नीचे आ गए। शासक दल ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के साथ गठजोड़ किया।

इसके बावजूद नयी कांग्रेस के साथ एक ऐसी बात थी, जिसका उसके बड़े विपक्षियों के पास अभाव था। नयी कांग्रेस के पास एक मुद्दा था; एक अजेंडा और कार्यक्रम था। 'ग्रैंड अलायंस' के पास कोई सुसंगत राजनीतिक कार्यक्रम नहीं था। इंदिरा गाँधी ने देश भर में घूम-घूम कर कहा कि विपक्षी गठबंधन के पास बस एक ही कार्यक्रम है : इंदिरा हटाओ। इसके विपरीत उन्होंने लोगों के सामने एक सकारात्मक कार्यक्रम रखा और इसे अपने मशहूर नारे 'गरीबी हटाओ' के ज़रिए एक शक्ल प्रदान किया। इंदिरा गाँधी ने सार्वजनिक क्षेत्र की संवृद्धि, ग्रामीण भू-स्वामित्व और शहरी संपदा के परिसीमन, आय और अवसरों की असमानता की समाप्ति तथा 'प्रिवी पर्स' की समाप्ति पर अपने चुनाव अभियान में ज़ोर दिया। 'गरीबी हटाओ' के नारे से इंदिरा गाँधी ने वंचित तबकों खासकर भूमिहीन किसान, दलित और आदिवासी, अल्पसंख्यक, महिला और बेरोज़गार नौजवानों के बीच अपने समर्थन का आधार तैयार करने की कोशिश की। 'गरीबी हटाओ' का नारा और इससे जुड़ा हुआ कार्यक्रम इंदिरा गाँधी की राजनीतिक रणनीति थी। इसके सहारे वे अपने लिए देशव्यापी राजनीतिक समर्थन की बुनियाद तैयार करना चाहती थीं।

परिणाम और उसके बाद...

1971 के लोकसभा चुनावों के नतीजे उतने ही नाटकीय थे, जितना इन चुनावों को करवाने का फ़ैसला। कांग्रेस (आर) और सीपीआई के गठबंधन को इस बार जितने वोट या सीटें मिलीं, उतनी कांग्रेस पिछले चार आम चुनावों में कभी हासिल न कर सकी थी। इस गठबंधन को लोकसभा की 375 सीटें मिलीं और इसने कुल 48.4 प्रतिशत वोट हासिल किए। अकेले इंदिरा गाँधी की कांग्रेस (आर) ने 352 सीटें और 44 प्रतिशत वोट हासिल किए थे। अब ज़रा इस तसवीर की तुलना कांग्रेस (ओ) के उजाड़ से करें: इस पार्टी में बड़े-बड़े महारथी थे, लेकिन इंदिरा गाँधी की पार्टी को जितने वोट मिले थे, उसके एक-चौथाई वोट ही इसकी झोली में आए। इस पार्टी को महज़ 16 सीटें मिलीं। अपनी भारी-भरकम जीत के साथ इंदिरा गाँधी की अगुवाई वाली कांग्रेस ने अपने दावे को साबित कर दिया कि वही 'असली कांग्रेस' है और उसे भारतीय राजनीति में फिर से प्रभुत्व के स्थान पर पुनर्स्थापित किया। विपक्षी 'ग्रैंड अलायंस' धराशायी हो गया था। इस 'महाजोट' को 40 से भी कम सीटें मिली थीं।

साभार: आर के लक्ष्मण द टाइम्स ऑफ इंडिया

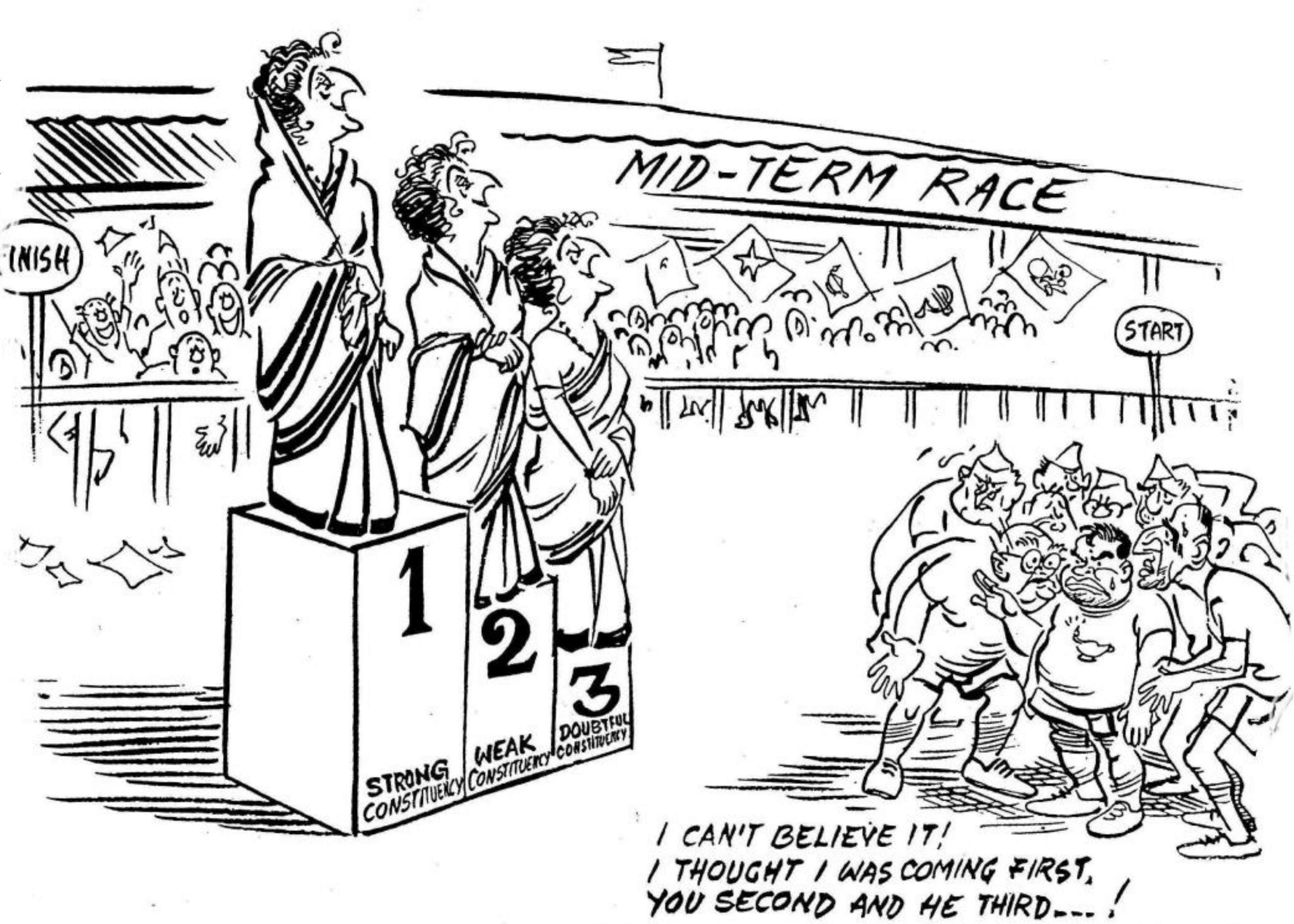

'द ग्रैंड फिनिश' नामक कार्टून में 1971 के आम चुनाव के परिणामों पर टिप्पणी की गई है। पराजित खिलाड़ियों के रूप में उस समय के प्रमुख विपक्षी नेताओं को दिखाया गया है।

साभार आर.के. लक्ष्मण, द टाइम्स ऑफ़ इंडिया

1971 के आमचुनाव की जीत में अनेक चुनौतियाँ और समस्याएँ भी छुपी थीं।

1971 के लोकसभा चुनावों के तुरंत बाद पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में एक बड़ा राजनीतिक और सैन्य संकट उठ खड़ा हुआ। चौथे अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि 1971 के चुनावों के बाद पूर्वी पाकिस्तान में संकट पैदा हुआ और भारत-पाक के बीच युद्ध छिड़ गया। इसके परिणामस्वरूप बांग्लादेश बना। इन घटनाओं से इंदिरा गाँधी की लोकप्रियता में चार चाँद लग गए। विपक्ष के नेताओं तक ने उसके राज्यकौशल की प्रशंसा की। 1972 के राज्य विधानसभा के चुनावों में उनकी पार्टी को व्यापक सफलता मिली। उन्हें गरीबों और वंचितों के रक्षक और एक मज़बूत राष्ट्रवादी नेता के रूप में देखा गया। पार्टी के अंदर अथवा बाहर उसके विरोध की कोई गुंजाइश न बची।

कांग्रेस लोकसभा के चुनावों में जीती थी और राज्य स्तर के चुनावों में भी। इन दो लगातार जीतों के साथ कांग्रेस का दबदबा एक बार फिर कायम हुआ। कांग्रेस अब लगभग सभी राज्यों में सत्ता में थी। समाज के विभिन्न वर्गों में यह लोकप्रिय भी थी। महज चार साल की अवधि में इंदिरा गाँधी ने अपने नेतृत्व और कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व के सामने खड़ी चुनौतियों को धूल चटा दी थी।

साभार: कुट्टी

मुख्यमंत्री चुनने की इंदिरा गाँधी की शैली पर एक कार्टूनिस्ट की टिप्पणी

कांग्रेस प्रणाली का पुनर्स्थापन?

बहरहाल कांग्रेस प्रणाली के पुनर्स्थापन का क्या मतलब निकलता है? इंदिरा गाँधी ने जो कुछ किया, वह पुरानी कांग्रेस को पुनर्जीवित करने का काम नहीं था। कई मामलों में यह पार्टी इंदिरा गाँधी के हाथों नयी तर्ज़ पर बनी थी। इस पार्टी को लोकप्रियता के लिहाज से वही स्थान प्राप्त था, जो उसे शुरुआती दौर में हासिल था, लेकिन यह अलग किस्म की पार्टी थी। यह पार्टी पूर्णतया अपने सर्वोच्च नेता की लोकप्रियता पर आश्रित थी। इस पार्टी का सांगठनिक ढाँचा भी अपेक्षाकृत कमज़ोर था। इस कांग्रेस पार्टी के भीतर कई गुट नहीं थे, यानी अब वह विभिन्न मतों और हितों को एक साथ लेकर चलने वाली पार्टी नहीं थी। इस पार्टी ने चुनाव जीते, लेकिन इस जीत के लिए पार्टी कुछ सामाजिक वर्गों जैसे गरीब, महिला, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यकों पर ज़्यादा निर्भर थी। जो कांग्रेस उभरकर सामने आई, वह एकदम नयी कांग्रेस थी। इंदिरा गाँधी ने कांग्रेस प्रणाली को पुनर्स्थापित ज़रूर किया, लेकिन कांग्रेस-प्रणाली की प्रकृति को बदलकर।

कांग्रेस प्रणाली के भीतर हर तनाव और संघर्ष को पचा लेने की क्षमता थी। कांग्रेस प्रणाली को इसी खासियत के कारण जाना जाता था, लेकिन नयी कांग्रेस ज़्यादा लोकप्रिय होने के बावजूद इस क्षमता से हीन थी। कांग्रेस ने अपनी पकड़ मज़बूत की और इंदिरा गाँधी की राजनीतिक हैसियत अप्रत्याशित रूप से बढ़ी, लेकिन जनता की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति की लोकतांत्रिक ज़मीन छोटी पड़ती गई। विकास और आर्थिक बदहाली के मुद्दों पर जनाक्रोश तथा लामबंदी लगातार बढ़ती रही। अगले अध्याय में आप पढ़ेंगे कि कैसे इन बातों से एक राजनीतिक संकट उठ खड़ा हुआ और जिससे देश के संवैधानिक लोकतंत्र के अस्तित्व पर ही खतरा मँडराने लगा था।

यह तो कुछ ऐसा ही है कि कोई मकान की बुनियाद और छत बदल दे फिर भी कहे कि मकान वही है। पुरानी और नयी कांग्रेस में कौन-सी चीज़ समान थी?

सिने-संसार

ज़ंजीर

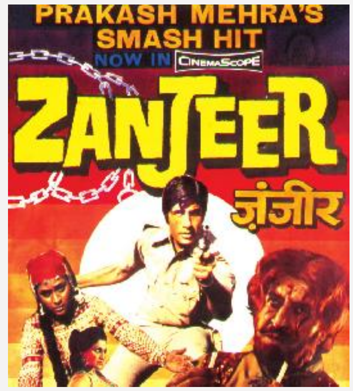

विजय एक नौजवान पुलिस अधिकारी है। वह गुंडागर्दी खत्म करना चाहता है, लेकिन उसे झूठे आरोप लगाकर जेल भेज दिया जाता है। जेल से बाहर आने पर विजय दोषी लोगों से प्रतिशोध लेने की ठानता है। उसे कई संकटों का सामना करना पड़ता है, लेकिन अंततः वह खलनायक और उसके साथियों को सबक सिखाकर ही रहता है। व्यवस्था के भीतर ही कई लोग ऐसे हैं, जो विजय को समाजविरोधी तत्त्वों से लड़ने में मदद पहुँचाते हैं। इस फ़िल्म में नैतिक मूल्यों के पतन और उससे उपजी कुंठा को बहुत प्रभावशाली ढंग से दिखाया गया है। फ़िल्म के नायक विजय का गुस्सा और क्षोभ व्यवस्था की लाचारी को गहराई से चित्रित करता है।

'ज़ंजीर' के साथ सातवें दशक में एक नए तरह के गुस्सैल नौजवान नायक का जन्म हुआ।

वर्ष : 1973

निर्देशक : प्रकाश मेहरा

पटकथा : जावेद अख्तर

अभिनय : अमिताभ बच्चन, अजित, जया भादुड़ी, प्राण

प्रश्नावली

1. 1967 के चुनावों के बारे में निम्नलिखित में कौन-कौन से बयान सही हैं:
   (क) कांग्रेस लोकसभा के चुनाव में विजयी रही, लेकिन कई राज्यों में विधानसभा के चुनाव वह हार गई।
   (ख) कांग्रेस लोकसभा के चुनाव भी हारी और विधानसभा के भी।
   (ग) कांग्रेस को लोकसभा में बहुमत नहीं मिला, लेकिन उसने दूसरी पार्टियों के समर्थन से एक गठबंधन सरकार बनाई।
   (घ) कांग्रेस केंद्र में सत्तासीन रही और उसका बहुमत भी बढ़ा।

2. निम्नलिखित का मेल करें :

(क) सिंडिकेट	(i) कोई निर्वाचित जन-प्रतिनिधि जिस पार्टी के टिकट से जीता हो, उस पार्टी को छोड़कर अगर दूसरे दल में चला जाए।
(ख) दल-बदल	(ii) लोगों का ध्यान आकर्षित करने वाला एक मनभावन मुहावरा।
(ग) नारा	(iii) कांग्रेस और इसकी नीतियों के खिलाफ़ अलग-अलग विचारधाराओं की पार्टियों का एकजुट होना।
(घ) गैर-कांग्रेसवाद	(iv) कांग्रेस के भीतर ताकतवर और प्रभावशाली नेताओं का एक समूह।

3. निम्नलिखित नारे से किन नेताओं का संबंध है:
   (क) जय जवान, जय किसान
   (ख) इंदिरा हटाओ!
   (ग) गरीबी हटाओ!

4. 1971 के 'ग्रैंड अलायंस' के बारे में कौन-सा कथन ठीक है?
   (क) इसका गठन गैर-कम्युनिस्ट और गैर-कांग्रेसी दलों ने किया था।
   (ख) इसके पास एक स्पष्ट राजनीतिक तथा विचारधारात्मक कार्यक्रम था।
   (ग) इसका गठन सभी गैर-कांग्रेसी दलों ने एकजुट होकर किया था।

5. किसी राजनीतिक दल को अपने अंदरूनी मतभेदों का समाधान किस तरह करना चाहिए? यहाँ कुछ समाधान दिए गए हैं। प्रत्येक पर विचार कीजिए और उसके सामने उसके फ़ायदों और घाटों को लिखिए।
   (क) पार्टी के अध्यक्ष द्वारा बताए गए मार्ग पर चलना।
   (ख) पार्टी के भीतर बहुमत की राय पर अमल करना।
   (ग) हरेक मामले पर गुप्त मतदान कराना।
   (घ) पार्टी के वरिष्ठ और अनुभवी नेताओं से सलाह करना।

6. निम्नलिखित में से किसे/किन्हें 1967 के चुनावों में कांग्रेस की हार के कारण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है? अपने उत्तर की पुष्टि में तर्क दीजिए:
   (क) कांग्रेस पार्टी में करिश्माई नेता का अभाव।
   (ख) कांग्रेस पार्टी के भीतर टूट।
   (ग) क्षेत्रीय, जातीय और सांप्रदायिक समूहों की लामबंदी को बढ़ाना।
   (घ) गैर-कांग्रेसी दलों के बीच एकजुटता।
   (ङ) कांग्रेस पार्टी के अंदर मतभेद।
7. 1970 के दशक में इंदिरा गाँधी की सरकार किन कारणों से लोकप्रिय हुई थी?
8. 1960 के दशक की कांग्रेस पार्टी के संदर्भ में 'सिंडिकेट' का क्या अर्थ है? सिंडिकेट ने कांग्रेस पार्टी में क्या भूमिका निभाई?
9. कांग्रेस पार्टी किन मसलों को लेकर 1969 में टूट की शिकार हुई?
10. निम्नलिखित अनुच्छेद को पढ़ें और इसके आधार पर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दें:

    इंदिरा गाँधी ने कांग्रेस को अत्यंत केंद्रीकृत और अलोकतांत्रिक पार्टी संगठन में तब्दील कर दिया, जबकि नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस शुरुआती दशकों में एक संघीय, लोकतांत्रिक और विचारधाराओं के समाहार का मंच थी। नयी और लोकलुभावन राजनीति ने राजनीतिक विचारधारा को महज चुनावी विमर्श में बदल दिया। कई नारे उछाले गए, लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि उसी के अनुकूल सरकार की नीतियाँ भी बनानी थीं–1970 के दशक के शुरुआती सालों में अपनी बड़ी चुनावी जीत के जश्न के बीच कांग्रेस एक राजनीतिक संगठन के तौर पर मर गई।

    – सुदीप्त कविराज

   (क) लेखक के अनुसार नेहरू और इंदिरा गाँधी द्वारा अपनाई गई रणनीतियों में क्या अंतर था?
   (ख) लेखक ने क्यों कहा है कि सत्तर के दशक में कांग्रेस 'मर गई'?
   (ग) कांग्रेस पार्टी में आए बदलावों का असर दूसरी पार्टियों पर किस तरह पड़ा?

खुद करें-खुद सीखें

राजनीतिक दलों द्वारा गढ़े गए नारों की एक सूची बनाएँ।

क्या आपको लगता है कि चीज़ों के विज्ञापन और राजनीतिक दलों के नारे, घोषणापत्र तथा विज्ञापनों में कोई समानता है?